सुदामा नाटक

'हरिश्चन्द्र', 'कृष्णसुदामा', 'कविताकुसुम'
आदि के रचयिता, अख़्तियारपुर
ज़िला आरा निवासी

बाबू शिवनन्दनसहाय-विरचित

और

आरा निवासी बाबू सिद्धनाथ सिंह द्वारा

प्रकाशित।



पटना—"खड्गविलास प्रेस" बांकीपुर।
बाबू चण्डीप्रसाद सिंह द्वारा मुद्रित।
१९०७

प्रथम वार] हरिश्चन्द्राब्द २३ [मूल्य =) आना

श्रीः

सुदामा-नाटक

(रंगशाला में पारिपार्श्वक गाता देख पड़ता है)

जगत में नहिं कोउ सांचो मीत ।
निजहित मीत बनत सबही हैं उर नहिं सांची प्रीत।
हिलि मिलि रहत सदा सुखदिन में करत प्रेम की बात।
दम यारी की भरत रहत नित करत समय पर घात॥
दुरदिन घटै दूर भाजत नहिं भटकत भूलेहु पास ।
रहत, जथा सूखे तरिवर सों नभचर सदा उदास ॥
कोउ मुख फेर रहत हैं जैसे सपनहु कबहु न परिचय ।
ऐसो मित्र महा दुखदाई मानहु मन महं निश्चय ॥
सब बिधि सों सबही सुखदायक मीत कृष्ण हैं सांचो।
सब की आस बिहाय सदा सिव तिनहीं के रंग रांचो॥

(सूत्रधार का प्रवेश)

स०—वाह वाह ! यह तो अच्छा तान छेड़ा, यहां तो मित्रमण्डली अभिनय देखने को जुटे हैं और तुम लगे गाने "नहिं कोउ सांचो मीत"। इस ढंग से तो दर्शकों को अवश्य प्रसन्न करोगे और माल भी खूबही मारोगे।

पा०—अजी मुझे तो न माल मारनेही की धुन है और न किसी की वाहवाही की। यदि ऐसा होता तो यही इन्द्रसभा की परियां न उतारता वा "लैलो लैलि पुकारत बन में" इसी का सुर न बांधता। यहां तो अभिनय द्वारा सदाचार प्रचार, ईश्वरभक्ति विस्तार और साथही साथ दर्शकों की प्रसन्नता अभिप्रेत है।

सू०—अच्छा यही सही। तब आज कौन नाटक खेलोगे और उस के रचयिता कौन हैं ?

पा०—रचयिता हैं हमारे एक परम स्नेही कायस्थ, आरा जिलान्तर्गत अख़तियारपुर निवासी बाबू शिवनन्दन सहाय और नाटक है "सुदामा" और भाषा है हिन्दी।

सू०—(मुंह बना कर) उंह ! कायस्थ और हिन्दी ! भला कायस्थ क्या हिन्दीभाषा का रस जाने ? वे तो ज़हूरी और उर्फ़ी के मुस्ताक और अरबी फ़ारसी में बरीक़ होते हैं। उन्हें तो इन्हीं भाषाओं के अल्फ़ाज़ के इसतिमाल का इशतियाक रहता है, वे तो इन्हीं की फ़साहत और बलाग़त पर मह्व रहते हैं। वे कब के हिन्दीभाषा के प्रेमी और कवि हैं। भला कहो तो सही, बिहार की कचहरियों में इतने दिनों से हिन्दी का प्रचार होने पर भी कितने कायस्थ लिखने पढ़ने में हिन्दी शब्दों का प्रयोग करते हैं। सुलभ और सरल हिन्दी शब्दों

के रहते हुए भी दफ्तरों में वही बातिल, बिल्फ़र्ज़, बिलजब्र माले सर्क़ा, अयानत, एकदाम, इंतकाम आदि शब्दों की भरमार है। और तिस पर कलाम यह कि फ़ारसी अल्फ़ाज़ों का मग़राज़ हिन्दी अल्फ़ाज़ों से बजिन्सही कमाहक़्हु ज़ाहिर नहीं हो सकता, इसी बाएस से मजबूरन हिन्दी में फ़ारसी के अल्फ़ाज़ काम में लाए जाते हैं। अजी साहिब! जितने सुलभ हिन्दी शब्द हैं पहिले उन्हें तो प्रयोग करना आरम्भ कीजिए, पीछे जो हिन्दी शब्द नहीं मिलेंगे उन्हें बतलाने को हमलोग प्रस्तुत हैं।

पा०--यह तुम्हारा कहना ठीक है कि कचहरिए कायस्थ हिन्दी में यथोचित रुचि नहीं प्रगट करते और उसके प्रचार की ओर उतना ध्यान नहीं देते। यदि वे लोग मन में धरते तो आज केवल हिन्दी अक्षरावरन का बुर्क़ा डाले उर्दू बीबी कचहरियों में नहीं नाचती फिरती। परन्तु "कायस्थ कब के हिन्दी भाषा के कवि" यह कथन तो तुम्हारी अजानकारी का परिचय देता है। क्या तुम ने काव्याचार्य्य छन्दार्णव के रचयिता कायस्थकुलोद्भूत भिखारीदास एवं पुहकर कवि, हलधर दास आदि का नाम भी नहीं सुना है? ये लोग तो भला प्राचीन काल के कवि हैं, क्या आधुनिक कायस्थ कवि लाला सीताराम बी० ए०, मुंशी गोकुलप्रसाद आदि के नाम भी तुम्हें श्रवणगोचर नहीं हुए?

सू०—अच्छा, यह जाना कि कायस्थ लोग प्राचीन काल से हिन्दी के रसिक और कवि भी होते आते हैं, पर तुम्हा नाटक के रचयिता कब के हिन्दी रसिक और इन्हों ने हिन्दी में क्या क्या लिखा है, ज़रा यह भी तो सुनें (मुंह छिपा कर मुस्काता है)

पा०—क्या तुम ने प्रसिद्ध समाचारपत्रों में इन की प्रशंसा नहीं देखी है? क्या तुम काशी कविसमाज, कविमण्डल एवं पटना कवि-समाज आदि द्वारा प्रकाशित पुस्तकों में इन की कवितायें कभी नहीं पढ़ीं? क्या तुम यह नहीं जानते कि प्रसिद्ध राजकवि लार्ड टेनिसन कृत "लाक्स-लेहाल" तथा अनेक विलायती कवियों के उपयोगी पदों का इन्हों ने हिन्दी में छन्दबद्ध अनुवाद किया है? और क्या तुम यह भी नहीं जानते कि हाल ही में इन्हों ने नागरी के नाह तथा हिन्दी नाटक के जन्मदाता भारतभूषण भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की जीवनी लिख कर हिन्दी रसिक समाज पर कितना उपकार किया है?

सू०—हां! हां! अब स्मरण हुआ। क्या वही महाशय जिन की "हरिश्चन्द्र" नामक पुस्तक की अंगरेज़ी और हिन्दी पत्रों में ऐसी सुन्दर समालोचनाएं हुई हैं? तब तो सुदामा नाटक भी अच्छा ही होगा।

पा०—अच्छा न भी हो, तौभी इस के द्वारा ईश्वर नामोच्चारण एवं श्री कृष्णछवि-प्रदर्शन तो अवश्य होगा। यह क्या

थोड़ा लाभ है। किसी ने कहा है "आगे के सुकवि रीझैं तौ तो कविताई ना तो राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो है।"

सू०—अच्छा, यही नाटक खेला जाय। उच्च पदस्थ होने पर भी और राज्याधिकार पाने पर भी अन्य को कौन कहे एक दीन मलीन मित्र के साथ भी कृष्ण ने कैसा प्रेम नेम निबाहा यह बात आज दर्शकों के हृदय पर अंकित की जाय। दर्शकों में बहुत से लोग इस से अवश्य उपदेश लाभ करेंगे। (नेपथ्य में गान)

देखहु प्रिय जन हृदय विचारी।
कौन अहै यह जग मों सांचो पदवी मीत केर अधिकारी॥
जात कुपथ बरजे बरजोरी बल अनुमान सदा हितकारी।
विपति काल में अधिक नेह उर सोइ सत मीत सहज सुखकारी॥
निज दुखपर्बत रज कर जाने मित्रक दुखरज गिरहु ते भारी।
जिह चित अस नहिं होत करत सो जग महं मीत नामकी ख्वारी॥
जे न दुखित हो निरखि मीत दुख तिनहिं बिलोकत पातक भारी।
परम कुटिल कपटी तिन्हें जानो अहिगति अहैं बिषम बिषधारी॥
कटिहैं मरम ठाहर निश्चय वे पाय समय उपकार बिसारी।
इन सों रहो सदा तुम न्यारे भाषत हैं "सिव" बात बिचारी॥

पा०—यह लो! हम लोग बातही चीत में लगे हैं और हमारे खिलाड़ी लोग उधर तैयार हो गये। चलो, हम लोग भी स्वकार्य्य में प्रवृत्त हों। [दोनों जाते हैं]

१ अंक

प्रथम दृश्य।

(सुदामा की कुटी।)

सुदामा—(हाथ में भिक्षा की झोली और खंजड़ी लिए) प्रिये गृहलक्ष्मी ! (पुकारते हैं)

स्त्री०—(कुटी से निकल कर प्रणाम करती है और आंचर से पैर धूलि झाड़ मस्तक पर चढ़ा, कुशासन बिछाकर) नाथ, बैठिये।

सु०—(बैठकर) प्रिये ! आज तुम्हारा आनन प्रभात शशि के समान मलीन क्यों है ? कुशल तो है न ?

स्त्री—नाथ ! श्रीचरणदर्शन ही से इस दासी का सब दुःख और चिन्ता दूर हो जाती है।

सु०—फिर उदास सी क्यों हो ?

स्त्री—महाराज ! मुझे अपनी चिन्ता अनुमात्र भी नहीं है, किन्तु आप का क्लेश देख कर चित्त व्यथित रहता है।

इस परिश्रम से दिन भर भिक्षाटन करने पर भी आप का उदर पोषण भलीभांति नहीं होता।

सु०—प्रिये! इस की चिन्ता कदापि न करना। ईश्वर की इच्छा हो में सुखी रहना। मेरा तो ईश्वरभजन प्रधान कार्य्य है, द्रव्य की चिन्ता उस में अवश्य बाधिका होगी।

स्त्री–आर्य्यपुत्र! जब उदरज्वाला ही से चित्त व्याकुल रहेगा तब यथावत भगवतभजन क्या कभी सम्भव है? और बिना अर्थ प्राप्त हुए निश्चिन्त भोजन की आयोजना नहीं हो सकती है।

सु०—प्रिये! धन भजन का बड़ा बाधक है। धन होने से लोग मदान्ध होकर कुमार्गगामी हो जाते हैं।

स्त्री—धन तो धर्म्म का सहायक दीखता है। धनही से यज्ञ का अनुष्ठान धनही से देवालय, अनाथालय, औषधालय का निर्माण, धनही से सदाव्रत का विधान, धनही से तीर्थादि स्थानों में दान, धनही से कवि कोविद का सम्मान, धनही से दुख का निदान, धनही से सुख्याति और धनही से स्वर्ग की प्राप्ति भी है।

सु०—और धनही से अभिमान, धनही से देव ब्राह्मण का अपमान, धनही से मद्यपान, धनही से नाचरंग का

सामान, धनही से नर्क को प्रस्थान, धनही से अड़ोसी पड़ोसियों पर अत्याचार और धनही से सकल कुव्यवहार का प्रचार भी होता है।

स्त्री--महाराज! इस में धन का दोष क्या? इस में तो पात्र का दोष अवश्य है। कुकर्मी धन पाने ही से कुपथगामी होगा और धर्म्मात्मा धन को सुकार्य्यही में व्यय करेगा। धन धर्म्मात्मा के हाथ में जाने से वर्षा की बूंदों के समान जगसुखदायक होगा। देखिए, जो स्वाती की बूंद सीप में पड़ने से मोती, केदली में पड़ने से कपूर, गजमस्तक पर पड़ने से गजमुक्ता पैदा करती है; वही सर्प के मुख में पड़ने से विष की वृद्धि करती है। आप को धन ईश्वरभजन में सहायकही होगा, बाधक कदापि नहीं हो सकता।

सु०—यह तो ईश्वर जानें। परन्तु जब मेरे भाग्य में दरिद्रता है तो धन की चिन्ता करने ही से धन कहां पावेंगे।

स्त्री—पतिदेव! चिन्ता से नहीं, किन्तु यत्न से तो धन प्राप्ति की सम्भावना है। यत्नपरायण मनुष्य को ईश्वर भी सहायता करते हैं। आप तो महान् पण्डित हैं, आप को सर्व विषय अवगत हैं।

जग में युगती यत्न के,
जानो सब आधीन ।
कहा मौन धारे रहो,
तुम पंडित परवीन ।

सु०—मुझे तो कोई उपाय नहीं सूझता, तुमही किसो यत्न का निर्देश करो।

स्त्री—बालसखा तुमरे बृजराज करैं अब राज दुआरिका माहीं। दीनदयाल दुखीजन रंजन गंजन सज्जन लोग सदाहीं॥ त्याग संकोच बिचार करो ढिग मीत के जात कहा को लजाहीं। नेक लगाओ न वार पिया चलि जाहु अबै तुम कान्हर पाहीं॥

सु०—हे प्रिये! तुम्हारा कहना बहुत ठीक है। गुरुवर्य्य के घर जब हमलोग वास करते थे तब वे हम से यथेष्ट नेह रखते थे। हम को अपना प्राणाधिक मित्र मानते थे। पर अब वे राजा हो गए और मैं महादरिद्र हूं। अब मुझे वे कब पहचानेंगे। धन होनेही से लोग पहली बातें भूल जाते हैं। मित्रता समावस्थावालों में बनती है। क्या तुम यह बात नहीं जानती हो कि दरिद्र को कोई नहीं पूछता? दुर्दिन आने पर अपना भी पराया हो जाता है।

प्रानप्रिया विपदा समय,
मीत पास नहिं जाउं ।
मान घटै आदर घटै,
लखि २ हिय बिलखाउं ॥

स्त्री—कृष्णचन्द्र कहं कंत संत सज्जन अस भाषहिं ।
दोन जनन के मीत प्रीत सबही सन राखहिं ॥
सरन गए नहिं तजत काहु श्रीकृष्ण मुरारी ।
लेत तुरत अपनाय कियो कितनहु अघ भारी ॥

तुम जाय मिलो उन तें अब, दुख दारिद मिट जाय सब ।
हौं हाथ जोर बिनती करति, पिय मान, मम बात अब ।

सु०— नन्द जसोरे बिहाय मुरारि जो जाय मधूपुरि बास कियोरी । राधे गोपीन को प्रेम भुलाय नहीं कबहु तिन सोध लियोरी ॥ सोध लियो तो कह्यो •करो जोग कह तिन सों कछु पैहै बियोरी । तातहि मातहि तीयहि जो न भयो वह मीतहि कैसे हियोरी ॥

स्त्री०—प्रीतहिं के बस होय गुपाल जु बाल खिआल सुग्वाल सों कीन्हों । पूरब प्रीति बिचार हिये तिन नन्द जसोमति को सुख दीन्हों ॥ प्रम पुरातन कारन ही घर मालो के जाय सुफूलहु लीन्हों । ज्ञान के होत अजान सुजान सु रावरे ज्ञान दिए कछु चीन्हों ॥

सु०—बिनु कारण नहिं करी कृष्ण किरपा काहू पर।
ग्वालन को सुख दीन्ह खाय माखन तिन के घर॥
रहै नन्द घर जाय मातपितु कैद भये ते।
माली को अपनाय लीन्ह कछु नीत नये ते॥
कहहु तुमहि को जगत माहिं जिहि संग कन्हाई।
बिनु देखे निज लाभ कहां कब कीन्ह मिताई॥

स्त्री०—धाय हरखाय गिरिराज को उठायो कान्ह, इन्द्र जब कोप महामेह झरी लाई है। ब्रज के बचाइबे को दावानल पान कीन्हो, नागहू को नाथ जन आपति नसाई है॥ ग्राह तें गयंद को उबार निर्द्वन्द तिमि, द्रोपदसुता की लाज दौर के बचाई है। कृष्ण की बड़ाई पिय मोहि तें न गाई जाय, गये तिन पाहिं सब भांतिन भलाई है॥

सु०—इन्द्र के गर्व गिरावन के हित हाथ गहे गिरि को सुनि सोई। कंस के पास पिठावन काज सुकंजन नाग नथे नहिं गोई॥ द्रोपसुतापर रीझ भई निज भाभिहि भाव तें अन्य न होई। मो सम रंक पै कौन ढरै री ढरै पै ढरै सुढरै सब कोई॥

सो राजा हौं रंक मैं,
तहां गये कहु कौन सिध।
सिर कुअंक औ पै लिख्यो,
टारि सकत नहिं आप विध॥

स्त्री—"जो कुअंक बिधि लिख्यो कृष्ण सक ताहि मिटाई।
शिव बिरंचि नहिं मेट सकत बरु ईश रजाई॥
कृष्ण भेंट पिय जान लेहु सौभाग्य प्रकासू।
दुख रजनी को अन्त तिमिर दारिद कर नासू॥
बस जाहु जाहु अब तुम पिया चरन गहहु यदुवीर बर।
चर अचर अचर चर जो करत जिहि सेवत सुर असुर नर॥"

सु०—प्रिये! तुम किस भ्रम में भूल रही हो? जिस द्वार पर अनगिनत याचक जमे होंगे, वहां मेरी बात भला कौन सुनेगा? श्रीकृष्ण के मीत कहनेही से लोग पागल पागल कह कर हम पर दौड़ेंगे, मेरी खबर जनाने की बात तो दूर रही। और कृष्ण से कदाचित् भेंट भी हो जाय, तो मुझे तनिक भी भरोसा नहीं है कि वे मुझे पहचानेंगे या अपनावेंगे, वरन् मेरी दशा देखते ही वे घृणा करेंगे और मुंह फेर लेंगे। तब वहां जानेही से क्या लाभ?

स्त्री—देखतही विद्युत सों अंक मो लगाय लैहैं, उर कहकाय दैहैं बासी-देव धाम को। तपन बुझाय हिय थल को जुड़ाय दैहैं, आस तरु करि हैं सपल्लव सुदाम को॥ भाग के सुमन को खिलाय समुदाय दैहैं, लता लहराय दैहैं आनन्द अराम को। नेह बरसाय दुख

दारिद बहाय देहैं, सांचो दरसाय देहैं नाम घनश्याम को ॥

सु०—लखि लखि तोर बिपतिया, हिय अकुलाय ।
सुनि सुनि कृष्ण कहनियां, ढाढ़स आय ॥
तब अनुरोधहि जाऊं, कान्हर द्वार ।
भेंट कहा लै जाऊं, कछु न बिचार ॥

स्त्री—श्रीकृष्ण के लिए कोई भेंट की भी आवश्यकता नहीं। आप यों ही प्रस्थान कीजिए।

सु०—नहीं २। देवता, वैद्य, राजा और मित्र के निकट खाली हाथ जाना उचित नहीं, सर्वथा अधर्म है। मैं ऐसा कदापि न करूंगा।

स्त्री—अच्छा, जो आज्ञा, मैं भेंट का भी कुछ प्रबन्ध कर देती हूं (थोड़ी फरुही लाकर सामने रखती है)।

सु०—(मुस्कुरा कर) छिः, तुम्हें कुछ विचार नहीं! महाराज के निमित्त यह संदेश? द्वारकानाथ क्या यही चाउर चिबावेंगे?

स्त्री—आर्य्यपुत्र! श्रीकृष्ण संदेश के भूखे नहीं हैं। वे केवल भाव और सच्ची प्रीति के भूखे हैं। आप संदेश के लिए खेद मत कीजिए। निःसंकोच यह तंदुल उन्हें भेंट

कीजिए । क्या आप को यह बात विस्मृत हो गई है कि:—

इक तुलसी के पात दै, लेत मुक्तिफल भक्तजन।
सरनागत बत्सल सदा, यहै प्रतिज्ञा हर्षमन॥

सु०—अच्छा, यह भी सही, परन्तु इस बाहुरी को ले जाना भी तो महा आपत्ति है। पास तो एक वस्त्र भी नहीं जिस में यह बांधी जाय।

[स्त्री आंचर फाड़ कर उस में बाहुरी बांध देती है; सुदामा चलते हैं]

[पटाक्षेप।

द्वितीय दृश्य।

स्थान कोट द्वारका।

[प्राकार से राजभवन तक भीड़ लगी है]

सु०—(चकित और विस्मित, आपही आप) अहा! कैसी कलधौत की अटारियां आकाश से बातें कर रही हैं! चतुर्दिक् कैसा कठिन पहरा पड़ रहा है? यहां के विभव और सम्पत्ति का इसी से पता लग सकता है कि यहां के पौरियों के ठाट के आगे बड़े २ धनिक भी मात हो रहे हैं। देखो, कितने कृष्ण-दर्शनाभिलाषी पुरुष पौरियों के

पास खड़े हैं, पर उन्हें भीतर जाने देने को कौन कहे, उन से वे सब मुंह भर बात भी नहीं करते। तो मैं अब क्या करूं?

जहां भेंट लिए ठाढ़ देवगण अहैं दरस हित।
केतिक मेरी बात अरू तंदुलहि कहो कित॥
जहां झुंड के झुंड बाज गज फिरत लखाहीं।
कहं यह दुर्बल जीव पहुंच सक कान्हर पाहीं॥

(पछताकर उदास भाव से)।

हाय! भगवान का भजन भी गया और कृष्ण से भेंट भी नहीं हुई तो मुझ से बढ़ कर दूसरा कौन अभागा मूढ़ होगा। जो हो, अब तो मैं श्रीकृष्ण के दर्शन का आनन्द लाभ किए बिना यहां से कदापि नहीं जाने का, चाहे प्राण रहे वा जाय। उन्हीं के श्रोद्वार पर जाकर उन्हें गोहराऊंगा, देखूं तो कैसे भेंट नहीं होगी।

(सजल नयन और सशंक राजसभा के फाटक की ओर बढ़ते हैं। एक युवक पौरिया उधर जाने से निषेध करता है।)

(एक वृद्ध पौरिया का प्रवेश।)

वृ० पौ०—हे विप्र महाराज! आप कौन हैं? नेत्रों में जल क्यों है? क्या आप को किसी ने कुछ कष्ट दिया है? किसी

ने ताड़ित किया है ? अथवा कुवाक्य कहा है ? आ
अपनी कथा मुझे सुनाइए। देखें, हम लोगों से आप व
कुछ उपकार हो सकता है कि नहीं।

यु० पौ०—हां, हां, ब्राह्मण देवता ! आप अपनी कथा
कहिए। देखें, हम लोग आप को रिष्ट पुष्ट मोटा ताज
बना सकें। (सब हंसते हैं और वृद्ध पौरिया भ्रूबंक क
के उन सबों को निषेध करता है।)

सुदामा—(पौरिया को आशीर्वाद दे कर) भैया ! मुझे कि
ने मारा नहीं, किसी ने सताया भी नहीं। मैं तुम्हा
स्वामी का सहपाठी हूं, उन्हीं से मिलने आया हूं। यदि
कृपापूर्वक तुम उन्हें जना दो कि आप का दर्शनाभिलाष
सुदामा नामक एक सखा ड्योढ़ी पर उपस्थित है तो मैं
तुम्हारा बड़ा उपकार मानूंगा।

सब—भला २ ! खूब ठाट जमाया ! क्यों न हो बाबाजी !

सु०—जाहु २ तुम बेग कान्ह कहं खबर जनावहु।
रहहु २ जनि ठाढ़ व्यथा मति अधिक बढ़ावहु॥
सुनहु २ मम बिनय ध्यानधरि तुमहिं सुनावों।
पुरहु २ मम आस श्वांस प्रति भला मनावों॥
कहहु २ तुम जाय दयाकरि कृष्णमुरारिहिं।
मिलहु २ इक सखा आय ठाढ़ो तुव द्वारहिं॥

लहहु २ हे सुजन ! सुयशकर यह उपकारिहिं।
करहु २ यह काज भला हो दीन भिखारिहिं॥

वृ० पौ०—बाबाजी महाराज ! आप ने भांग तो नहीं छानी है ? तनिक समझ बूझकर बातें कीजिए। कहां महाराज द्वारकाधीश और कहां आप रंकराज ! आप खाने पीने के लिए जो आज्ञा कीजिए सब प्रस्तुत है। भोजन कीजिए और घर को राह लीजिए। महाराज से भेंट का स्वप्न न देखिए और भेंट २ मत बर्राइए।

सु०—नहीं बाबा ! मुझे भोजन की इच्छा नहीं मैं तो केवल दर्शनाभिलाषी हूं। जितना जी चाहे तुम लोग डांट डपट करो। पर चरणकमल दर्शन बिना मैं यहां से जानेवाला नहीं। तुम्हारा कहना क्या, यदि देवगण भी आकर मुझे उपदेश करें तो भी किसी का कुछ सुननेवाला नहीं। सुमेरु टर जाय तो टर जाय, पर मैं यहां से अब टरनेवाला नहीं। (बैठ जाते हैं)

यु० पौरिया—(सरोष) बाबा जी, आप तो व्यर्थ हठ कर रहे हैं। महाराज से कदापि भेंट नहीं होगी। आप कृपा कर घर की राह लीजिए। आप जगत्पूज्य ब्राह्मण हैं, इसी से हम लोग आप से सविनय कहते हैं। कृपा कर मेरी बात मान लीजिये।

सु०—बाबा ! यदि मुझे जगत्पूज्य ब्राह्मण मानते हो, तो मेरी आज्ञा मान कर मेरे आशीर्वाद के भागी क्यों नहीं होते ? श्रीकृष्ण को मेरा सम्बाद क्यों नहीं देते ? तुम जाकर निःशंक कहो कि एक ब्राह्मण फाटक पर उपस्थित है, अपने को आप का सखा बताता है और दर्शन की जांचना करता है।

वृ० पौ०—बाबाजीमहाराज ! सकल संसार जिस के दृष्टि-कोर की ओर ताकता रहता है और जिस के कृपाकटाक्ष का अभिलाषी है उसे आप एक भिक्षुक होकर मीत कहने का साहस करते हैं। यदि सुरतरुस्वरूप श्रीकृष्ण से आप को सखित्व होता तो आप दरिद्र ही बने रहते ?

सुदामा—

अहो सुजन जानो नहीं, हिमकर ससि आधार।
तऊ चकोर कुभागबस, भोजन करत अंगार॥

वृ० पौ०—अच्छा बाबा जी ! मैं आप से हार गया। चाहे मेरे माथे कोई आपत्ति भी क्यों न आवे, पर मैं आप का सम्बाद श्री महाराज को अवश्य दूंगा।

(जाता है)

(सुदामा का नाम सुनतेही श्रीकृष्ण बेसुध आकर उन को अंक में लगालेते हैं और प्रेमाश्रु बहाते परस्पर हाथ धरे दोनों भीतर जाते हैं।)

(पटाक्षेप)

२ अंक।

प्रथम दृश्य।

श्रीकृष्ण महाराज का अन्तःपुर।

(श्री रुक्मिणी, सत्यभामा आदि रानियां बैठी हैं, श्रीकृष्ण सप्रेम सुदामा के कंधे पर हाथ धरे आते हैं)

श्रीकृष्ण—(सुदामा को निजासन पर सादर बैठाकर) प्रिये ! इन से संकोच करने का काम नहीं। ये हमारे अनन्य मित्र हैं। तुम लोग इन की सेवा शुश्रूषा करती जाव।

रुक्मिणी—जो आज्ञा (सब सुदामा को सादर प्रणाम करती हैं, रुक्मिणी पांव पखारती हैं, सत्यभामा पंखा डोलाती हैं और अन्य रानियां अन्य सेवा में प्रवृत्त होती हैं)

सुदामा—(सकुचकर) महाराज ! मैं न कोई यक्ष हूं, न किन्नर हूं, न देव-लोक-वासी कोई जीव हूं, न मैं कोई महान विद्वान और ज्ञानवान पुरुष ही हूं; न मैं देव-राज, ऋषिराज वा कोई मुनिराज ही हूं। महाराज ! मैं तो एक रङ्कराज सुदामा नामक ब्राह्मण हूं। कदाचित् आप ने मुझे भली भांति पहचाना नहीं।

श्री कृष्ण—(सप्रीति हाथ थाम्ह कर)

पहचानिहौ किमि हाय नहिं,
निज प्रान सम प्रिय मीत को।
नहिं चीन्हते निज मीत जो,
जग मौं महा मतिमंद सो॥

संग रावरे जो सुख भयो,
अजहूं कबहुं न भुलात है।
सुधि होत पूरब दिनन की,
हियरा हहा अकुलात है॥

तुव सहज सील सनेह जग,
कोऊ कवौं पैहै कहां?
सो सुजनता सो सरलता,
नहिं कपट को लेसहु जहां॥

जो लखत दूर हिं ते ललकि,
मुहिं अंक निज धारत रह्यो।
जो नेह नव दरसाय नित,
मन प्रान निज वारत रह्यो॥

जो देत सुन्दर सिख सदा,
सदधर्म्म उपदेशत रह्यो।
मम कठिन पाठ हु सरल कै,
तिहि अर्थ सुठि बरनत रह्यो॥

किहि हेतु मुहि भूले हुते,
अपराध मो तें का भयो।
फंसि जगत के जंजाल धों,
अब लगि नहीं दरसन दियो॥

भैया! क्या तुम मुझे सर्वथा भूल गए थे? भला इतने दिनों पर तुम ने कृपा तो की, अब तो दर्शन दिया, मैं इतने ही में अपने को धन्य मानता हूं और भाग्यवान समझता हूं। पर हा! तुम्हारा वह विशुद्ध स्नेह भूले भी नहीं भुलाता (नेत्रों से अश्रु धारा प्रवाहित करते हुए)

भैया! जसे तुमने अनुग्रहपूर्वक मुझे दर्शन दिया, वैसे ही कृपा करके भाभी के संदेश से भी मुझे वंचित मत करो। भाभी ने मुझे संदेश अवश्य भेजा होगा। संदेश के लिए मेरा मन ललच रहा है। शीघ्र दो, विलम्ब मत करो। क्या उसे छिपा ही रखने का मन है?

सु०—(लज्जित हो कर)

(हौं दरिद्र ब्राह्मन दुखी, का निधि मेरे पास।)

कृष्ण—(मुस्कुरा कर)

(कछु संदेस लाए नहीं, मोहि न अस बिस्वास॥)

अच्छा देखें तो, तुम्हारे कांख को मोटरी में क्या है? (सुदामा की कांख से मोटरी खींच कर खोलना चाहते हैं)

सु०— (घबड़ा कर मोटरी अपनी ओर खींचते हुए) महाराज ऐसा मत कीजिए। आप माखन मिश्री के खानेवाले हैं, आप स्वादिष्ट पदार्थों के खानेवाले हैं, आप इसे न खाइए। इस से पेट में अवश्य पीड़ा होगी, मुझे भारी कलंक होगा। महाराज क्षमा कीजिये (माथा ठोक कर) हा! कुबुद्धिनी ब्राह्मणी ने क्या किया? मुझे अपयशभाजन ही बनाने के लिए यहां भेजा। हा देव! मैं कैसा पापी अभागा हूं।

श्रीकृष्ण—भाभि सुगात हि तात सुनो सुठि मेवा मिठाई मलाई न पैहैं। जो रस जन्म अनेकन मों नहि पायो कबौं कछु खाए सो दैहैं॥ या को बखान कहा करिहों जिहि खातेहिं देव सबै ललचैहैं। केदलि छाल छुकी वन ज्वाल पची सोइ चाउर आज पचै हैं॥

भैया! मुझे खाने दो, तुम तनिक भी चिन्ता मत करो।

सुदामा—(विलखकर)

भो बड़ आज अजसवा, हे सुखऐन।
भामिनि कीन्हि कुमतिया, भल अब है न॥
कुमति संदेसो भेजिस, समझिस नाहिं।
महाराज यदुराज कि, तंदुल खाहिं॥
बिनय करौं गहि बहियां, कृपानिधान।
जनि जनि खाहु तंदुलवा, राखहु प्रान॥

तनिक भए अनपचवा, नहि कल्यान।
जान सुविप्रक जैहें, अवस निदान।

(उधर तब तक कृष्ण ने दो मुठ्ठी बाहुरी फांकली और तीसरी मुठ्ठी मुंह में लगानाही चाहते थे कि श्रीरुक्मिणी महारागी बांह पकड़ कहने लगीं)।

रु०—तीनहुलोक जो मीत कहं, देवहु पाय सुजान।
औरन की गति हो कहा, करो हीय अनुमान॥

श्रीकृष्ण–हे प्राणप्रिये ! तू ने यह क्या किया ? भाभी की भेजी हुई अमीफल के समान बाहुरी खाने से मुझे बंचित किया। ऐसी स्वादिष्ट वस्तु तो मुझे आज तक कभी नहीं मिली। यदि हमारे परम पूजनीय मित्र त्रिलोक के मालिकही हो जाते तो इस में तुम्हारे भय और शोक को क्या बात थो। तुम्हारे साथ मित्रसेवा ही से मैं सदा संतुष्ट होता। इस में तुम्हारी क्षतिही क्या होती ? अच्छा, अब मेरी तृप्ति हो गई। भोजन का भी समय आगया। मित्र को भोजन कराने में अब विलम्ब उचित नहीं। (सुदामा का हाथ पकड़े सब के संग पाकशाला को ओर जाते हैं)।

(पटाक्षेप)

दूसरा दृश्य

(*स्थान—शयनागार*) ।

[श्रीकृष्ण सुदामा, रुक्मिणी, सत्यभामा आदि विराजमान हैं]

श्रीकृष्ण—मित्रवर ! अब इस शय्या को पवित्र कर मार्ग-जनित श्रम को निवारण कीजिए ।

सु०—आप के दर्शन एवं अलौकिक सेवा-सत्कार ही से सब श्रम जाता रहा । दिनों पर भेंट होने से वार्तालाप से तृप्ति नहीं होती । अभी कुछ देर के बाद सोना अच्छा होगा ।

श्रीकृष्ण—अच्छा, पान और इलायची लीजिये । वार्तालाप से तो मुझे भी तृप्ति नहीं होती, मुझे केवल आप के श्रमनिवारण की चिन्ता है ।

सत्यभामा—(हाथ जोड़ कर और मुस्किराकर) प्राणनाथ ! यदि अनुग्रहपूर्वक आप अपने मित्र की सविस्तर कथा हमलोगों को भी अवगत कराइये तो बड़ी कृपा हो ।

श्रीकृष्ण—(सजलनेत्र) हे प्रिये ! जब मैं नर्मदातटस्थ अवंतिकापुरी में श्री गुरुवर्य्य संदीपन महाराज के यहां विद्या पढ़ने गया था तो इन ही की कृपा से गुरुमहाशय और

उन को पत्नी दोनों हम पर सर्वदा प्रीति प्रदर्शन करते रहे, इन्हीं की कृपा से यह देहरूपी तरुवर विद्याफल से सुशोभित हुआ। एक दिन जब गुरु के यज्ञ के लिये हमलोग बन से ईंधन लाने गए और बनही में सूर्य्यास्त हो गया और दुर्जय मेघसेना ने वज्रप्रहार करते, बूंदों के अविरल वाण डारते, बिजुली की खड्ग बारम्बार चमकाते, हमलोगों पर आक्रमण किया, जब बड़े २ झंखार पेड़ भय से कांपते भूतलशायी होने लगे, बनजन्तुओं का भीषण चीत्कार सब का प्राण हरने लगा, इस समय इन्हों ने अपने अंक में लेकर मेरे प्राण की रक्षा की। मैं इन का उपकार कदापि नहीं भूल सकता।

सत्यभामा—महाराज, अब इस दासी को सर्वबृत्तान्त ज्ञात हुए। तब तो यह हमलोगों के लिये देवस्वरूप ही हैं परन्तु आपने आज तक इस घटना का कभी विवरण नहीं किया।

श्रीकृष्ण–प्रिये! इनके उपकार और स्नेह की सुधि आते ही मेरा कंठावरोध हो जाता था, इसी से इन की कथा कहते नहीं बन आती थी। अच्छा, अब तुम लोग अपने २ भवन में जाती जाव, मैं अपने मित्र को सुला कर तब सोऊंगा। (सब जाती हैं, सुदामा सोते हैं, कृष्ण उन का चरण चांपते हैं।)

(विश्वकर्मा का प्रवेश ।)

विश्व०—महाराज, यह दास क्यों याद किया गया ?

श्रीकृष्ण—जाय अबै तुम ग्राम रचो अस जाहि बिलोक तिलोक लजाय। भूषन भूर भरो धनधाम सुआसन वासन जे जग भाय ॥ कोठा अटारी अमारी रचो कहुं नाहि भिखारि को नाम सुनाय। डंक सुदामा निसंक बजै अरु रंक कलंक पलंक पराय ॥

विश्व०-जो आज्ञा (जाना है)

(पटाक्षेप)

तृतीय दृश्य ।

[सुदामा के स्वर्णमन्दिर में उनकी स्त्री सोई है]

श्रीकृष्ण-(अर्धनिसा में) भाभी ! भाभी ! !

स्त्री—(कुछ सोई कुछ जागृतावस्था में) हैं ! इतनी रात को मेरे कुटीद्वार पर कौन पुकारता है और क्यों पुकारता है ? ऐसा तो कभी नहीं हुआ। आज ब्राह्मण देवता भी नहीं हैं। हे भगवान !

श्रीकृष्ण-(समीप जाकर) भाभी ! भाभी भाभी ! ! !

स्त्री—(उठ कर आपही आप) हैं, यह क्या ? मैं कहां हूं ? किस ने मुझे यहां लाया ? यह स्वर्णमन्दिर कैसा ?

और ये दासियां कौन और क्यों सोई हैं? क्या किसी पापी ने पति देवता के परोक्ष में मुझे यहां उठा लाया? यह दूसरा दशमौलि कौन पैदा हुआ? क्या इसे ब्रह्म-रोषाग्नि का भय नहीं? पर मैं तो सती भिखारिनी हूं। एक पतिदेव को छोड़ मैं तो और पुरुष को जानतीही नहीं। मेरी आंखों में तो सिवाय पतिदेव के अन्य सबही पुरुष जड़ पदार्थ के समान दीखते हैं। हे माता जनकनन्दिनी! तुम ने तो निज इच्छा से मानवी लीलार्थ दनुजवंश विध्वन्श के लिये अपनी छाया को अपहृत होने दिया। तुम तो सर्वदा निष्कलंक। पर मुझे इस कलंक से कौन बचावेगा? हे जगतजननी, सतीशिरोमणि जनकलली! तुम्ही मेरे पति-ब्रत-धर्म्म की रक्षा करो। हे करुणासागर कृष्णमुरारी! द्रुपदसुता की नाईं तुम्ही मेरी लाज बचाओ। हे पतिदेव! मैं अभी आप की मूर्ति हृदय में धारण किए अपना प्राण विसर्जन करती हूं। (मूर्छित होती है और श्रीकृष्ण चैतन्य कराते हैं)

स्त्री—(श्रीकृष्ण को देखकर) आप क्या कोई देवता हैं? क्या आप ने मेरी दुरवस्था देख मेरी धर्म्मरक्षा के निमित्त कृपा की है?

श्रीकृष्ण-भाभो, मैं तुम्हारा अनुचर हूं। तुम्हारे चरणदर्शन की बड़ी लालसा थी। तुम्हारी ही प्रेरणा से मेरे परमपूजनीय हितकारी मित्र ने इतने दिनों के बाद मुझे दर्शन दिया। उन्हीं के दर्शन से तुम्हारे दर्शन का और भी अनुराग हुआ।

स्त्री—अहा! आपही भक्तवत्सल राधारमण हैं? आपही करुणामय, दुखी-दुख-भंजन देवकीनन्दन हैं? आपही अशरणशरण भगवान हैं? अब मैं समझ गई कि यह सब आपही की अद्भुत लीला है। (युगल कर जोड़ स्तुति करती है)

स्तुति (चर्चरीछंद)

जै दयाल कृपाल केशव, जै दुखी-जन-रंजनं।
जै अनेक सरूपधारक, भक्त भै-भव भंजनं॥
सृष्टिकारक सृष्टिपालक, सृष्टिनासक आपहीं।
आदि अन्त न वेद पावत, भेद जानता ना कहीं॥
तद्यपी तुम प्रेम के बल, संग गोपन के फिरे।
इन्द्र को मद चूरिबे हित, नोह पै पर्वत धरे॥
प्रेमहीं बस ऊखली महँ, मातु बन्धन को लहे।
पै बली अति कंस प्रानहि, रोष पावक में दहे॥
रावरी यह रीति गावत, संत सारद सर्बदा।
दीन सों अतिप्रीत राखत, दीन भूलत ना कदा॥

बुद्धिहीन मलीन पातकि, नारि हौं गुन का कहौं।
मोह आदि सताय मारत, एकहु सुख ना लहौं॥
जौं दया कर स्यामसुन्दर, दीन को सुखिया कियो।
रूप लावनहू दिखा सुख, नैन को अतिसैं दियो॥
भूल हू मन रावरो पग, स्वप्नहूं महं ना तजै।
खात पीवत सैन जागत, सर्बदा तिहि को भजै॥
(चरण पर गिरती है।)

श्रीकृष्ण—(उठाकर) तुम पतिपरायणा स्त्री हो, तुम्हारा सर्वदा कल्याण है, तुम्हारी सर्वत्र जय है, यह तुम्हारी ही पतिभक्ति का फल है कि तुम्हारे स्वामी आज इस सुख सम्पत्ति के भागी हुए हैं। कौन ऐसी वस्तु है जिसे प्राप्त करने में पति-परायणा सती समर्थ नहीं हो सकती? तुम पतिसेवा ही में सर्वदा दृढ़ रहो। उभय लोक में तुम्हारे और तुम्हारे पूज्यदेव स्वामी का कल्याण है। कुछ चिन्ता न करना। अब मैं जा कर अपने मीत को शीघ्र भेज देता हूं। पर मैं वहां से उन को पूर्वावस्थाही में भेजूंगा जिस में कोई यह न कहे कि मेरे मीत धन की लालच से मेरे निकट गए थे। अब मैं जाता हूं। [पटाक्षेप]

---

३ अंक।

प्रथम दृश्य।

(मार्ग)

सुदामा—(पूर्ववत कोपीन धारण किए चले जाते हैं। आपही आप) ओह! कैसा विभव, कैसा सरल स्वभाव, कैसा नेम प्रेम, कैसी नम्रता और दयालुता! मूढ़ थोड़ेही धन में इतरा जाते हैं, जिस से पूर्व में अनन्य मित्रता रहती है उसे भी धन पाते ही सर्वथा भूल जाते हैं, मानों कभी का परिचय भी नहीं। राजा होकर यह स्नेहमय स्वभाव! धन्य हैं श्रीकृष्ण! दर्शनही के योग्य हैं, इस में संदेह नहीं।

(ऐसे ही कहते २ कोपीन पर दृष्टि पड़ी और ठंढी सांस लेकर कहने लगे)

कियो कान्ह सत्कार, बहुत मोर संसय नहीं।
पै न दियो कछु यार, सोई भिखारी मैं रह्यौं॥

सच है दुख के समय कोई काम नहीं आता। विधाता ने जब मुझे रंक बनाया तो किस की सामर्थ्य है जो मेरा दुख दूर करे! मीत ही क्या कर सकता है? अपने कर्म का फल तो सब को अवश्य भोगना ही पड़ेगा। और मैं मीत किसे कहता हूं? वह राजा और मैं रंक। मित्रता तो बराबरी में



होती है। यह तो मैं पहिले ही से कहता था। यह मेरी ढिठाई थी जो द्वारका में जा कर उन्हें मीत कहा। कुशल हुआ कि उन्हों ने मेरा पूरा आदर सत्कार किया। वहां तो इस दीन की लाज रह गई। मैं इसी को धन्य मानता हूं और उन्हें कोटिशः आशीर्वाद देता हूं। हां खेद इस बात का है कि घर पर गृहिणी धन की आशा लगाए बैठी होगी, मुझे खाली हाथ देख कर उस की व्यथा सहस्र गुण बढ़ जायगी। और दुःख इस का है कि इस आने जाने में यथावत ईश्वर-भजन भी नहीं हुआ, उस के सुख से भी इतने दिनों तक बंचित रहा। प्रभो ! तुम क्षमा करो। मुझे आप ही की कृपा का सर्वदा भरोसा है। दुखिया का संसार में और कोई नहीं। "निर्धन के धन राम गोसाईं" और क्या ?

(उदास होकर बैठ जाते हैं) (पटाक्षेप)

द्वितीय दृश्य।

स्वर्ण सम्पन्न सुदामा का घर और ग्राम।

सुदामा—(गांव के बाहर चकित इधर से उधर घूमते हैं और आप ही आप) ऍं ! यह तो महा अन्धेर सा दीखता है। न मेरी कुटी ही नज़र आती और न मेरी स्त्री ही दिखाई देती। गांव ही की दशा परिवर्तित देख पड़ती है। जिधर दृष्टि जाती है

कलधौतही के धाम नज़र आते हैं । और मज़ा तो यह, कि सुदामा के नाम का डंका भी बज रहा है । वाह रे कुतूहल ! हे भगवान ! क्या मैं जागृत ही अवस्था में स्वप्न देखरहा हूं । हाय ! हाय !! मैं कहां आ निकला ? मुझे दिग्भ्रम तो नहीं हुआ ? मैं फिर द्वारका तो नहीं चला आया ? तब तो बड़ी फ़ज़ीहती हुई । (इधर उधर ध्यानपूर्वक देख कर) नहीं, कदापि नहीं । यह नगरी द्वारका सी है सही, परंतु यहां सागर नहीं और न यहां कृष्ण के नाम का डंका बजता है ।

(थोड़ीदेर सोच कर) प्रतीत होता है किसी सुदामा नामक राजा ने मेरी नगरी को ले लिया और मेरी कुटी उजाड़ कर ब्राह्मणी को निकाल दिया । परंतु कोई आर्य्यसन्तान ब्राह्मण का घर कैसे उजाड़ेगा, या उस की स्त्री पर कैसे अत्याचार करेगा ? राजा तो धर्म्मात्मा होते हैं । पर कौन कहे ? धनमद मनुष्य को अन्धा बना देता है, धर्म्मपथ से विचलित कर देता है । हा विधाता ? अब क्या करूं ? किस से पूछूं और कौन बतावै ? परंतु अब खेद ही करने से क्या होगा ? जो बदा था सो हुआ । अब यहां रह कर क्या होगा ? कहीं चलूं ईश्वर के चरणकमलों का

ध्यान करें । (सुदामा चलना ही चाहते हैं कि, बहुमूल्य अलंकारों से भूषित सहेलियों के संग उन की स्त्री आती है)।

स्त्री--(सप्रेम हाथ धर कर) प्राणनाथ ! आप इस दासी को त्याग कर कहां जा रहे हैं ? इतने दिनों से मैं आप की बाट जोह रही थी। चलिये इस विभव का सुखभोग कीजिए।

सु०--(चौंक कर और कांपते हुए) उच्च कुलकामिनी हो कर भला आप ऐसा अयोग्य काम क्यों करती हैं ? एक गरीब अपरिचित दुखी ब्राह्मण का हाथ क्यों पकड़ती हैं ? भला मैं ने क्या अपराध किया ? आप को ऐसा क्या करना उचित नहीं (हाथ खींचते हैं)।

स्त्री—(हंसकर) प्राणनाथ ! आप तनिक भी संदेह और संकोच मत कीजिए। यह घर आप का है और मैं आप की हूं। जिस नारी की खोज में आप व्यग्रचित्त हो रहे हैं, वह आप के सन्मुख करसम्पुट किए उपस्थित है। अब कृपा कर के अपने घर पधारिए।

सु०--(माथा ठोक कर आपही आप) हे ईश्वर ! मैं किस आपत्ति में आफंसा ! अब इस से कैसे प्राण का त्राण होगा। न जानें मैं ने किस मुहूर्त में घर से प्रस्थान किया था कि जहां जाता हूं वहां ही विपत्ति पिछुआए फिरती

है। द्वारका जाने से मिला तो एक भी नहीं और हाथ से गये दो—घरनी और घर। अब यहां जीवन का अमूल्य धनधर्म्म और प्राण जाने की भी बारी आगई। हा कुभाग! तैंने सर्बनाश किया। हे दीनबन्धु! मेरे धर्म्म की रक्षा करो। मुझे प्राण की कुछ चिन्ता नहीं। अब प्राण रह ही कर क्या करेगा?

स्त्री—करतें नहि एकहु पीव गयो।
वह जौन हुती नहि गेह भयो॥
गति देख मती भरमात महा।
सुख मों इतनो मन खेद कहा॥

प्राणनाथ! आप तनिक सावधान हो कर मेरी बातों को सुनिये, आप ही मेरे परम पूज्य एवं सर्व कल्याणकारक हृदयेश्वर देवता हैं। मैं ही आप की दीन भिखारिनी दासी हूं। मैं ने ही प्रेरणा कर के आप को श्री द्वारकाधीश की सेवा में विदा किया था। उन्हीं की कृपादृष्टि से आप की पर्णकुटी स्वर्णमन्दिर और यह नगरी भी ऐसी विभवसम्पन्ना हो गई है। लक्ष्मी जी के शुभागमन ही से यहां श्री छाई हुई है। यह आप की धर्म्मपरायणता का फल है कि मैं एक दरिद्र भिखारिनी इन अलंकारों और भूषणों से भूषित होकर सहेलियों के संग आप की सेवा के निमित्त आप के आगे खड़ी हूं। आप किञ्चित मात्र भी संदेह न कीजिए।

यह सब श्री कृष्ण की लीला है। अब कृपा कर अपने घर में पदार्पण कर के उसे सुशोभित कीजिए।

सब सखियां—जय श्रीकृष्ण की? जय द्वारिकाधीश की !!

सु०--(आप ही आप) सचमुच यह क्या मेरी ही नगरी है? यह कामिनी क्या मेरी ही सहधर्म्मिणी है? यह क्या श्री कृष्ण ही की कृपा का प्रभाव है? (स्त्री को भली भांति पहचान कर प्रगट) प्रिये! मुझे क्षमा करना। यहां की अवस्था सर्वथा परिवर्तित और तुम्हारी लावण्यमयी कान्ति देख कर मेरी बुद्धि एक दम चकित और भ्रमित हो रही थी। तुम्हारे मुख से सविस्तर कथा सुन कर अब मुझे प्रतीत हुआ कि यह सब श्रीकृष्ण की अपार कृपा का फल है। परंतु यह परिवर्तन इतना शीघ्र कैसे हुआ सो भी कह सुनाओ कि चित्त की शान्ति हो।

स्त्री-संक्षिप्त कथा यह है कि आप के द्वारका जाने के बाद श्रीकृष्णचन्द्र निशाकाल में यहां आ कर भाभी कह कर पुकारने लगे। उन का पुकारना सुन कर मैं चौंक उठी तो क्या देखती हूं कि मैं इसी सामने के महल में हूं और एक श्याम सलोना सांवरा पुरुष मेरे सन्मुख खड़ा है। कुछ डरी, कुछ चकित हुई। फिर मैंने मन में निश्चय किया कि हो न हो यह सब श्रीकृष्ण की लीला है और आप के पुण्यप्रताप से वे ही साक्षात मुझे दर्शन दे कर कृतार्थ

कर रहे हैं। बस चट उन के चरणकमलों पर गिरी और उन्हों ने भाभी २ कह के मुझे उठा लिया।

स्त्री—अनेक प्रकार से सुन्दर शिक्षा द्वारा मेरा प्रबोध कर के द्वारका लौट गए। तब से इसी सामने की अटारी पर खड़ी आप की प्रतीक्षा कर रही थी कि आज आप के पदारविंद का दर्शन हुआ (पैर की धूलि माथे चढ़ाती है)

सु०—(गदगद कंठसे)

नाथहि निज अज्ञान तें, मैं न हाय पहचान।
लखी प्रीत की रीत तउ, दियो न मैं कछु ध्यान॥
दियो न मैं कछु ध्यान दुःख भाज्यो नहिं आन्यो।
रह्यो रंक को रंक यही निश्चय कर मान्यो॥
बुद्धि भ्रमित नहिं सूझत कंकन जिमि निज हाथहि।
मिले जगत के नाथ न जान्यों जग के नाथहि॥
(आत्मविस्मृत होते हैं, स्त्री घर लिवा जाती है)

(पटाक्षेप)

चतुर्थ दृश्य।

(सर्व सामग्री सम्पन्न एक सुसज्जित भवन !)

(एक आसन पर सुदामा विराजमान हैं, दास दासियां खड़ी हैं और उन की स्त्री वस्त्राभूषण लिये उपस्थित हैं)

स्त्री०—आर्यपुत्र ! आप अब वस्त्राभूषणों को धारण कीजिए।

सु०—नहीं ! प्रथम ईश्वरपूजन और ईश्वरभजन परमावश्यक है। धन पा कर जो मदान्ध हो जाते और ईश्वरभजन से विमुख हो जाते हैं, उन के समान कृतघ्न और पापी दूसरा नहीं।

(स्त्री पूर्ववत पूजन सामग्री लाती है। सुदामा पूजनानन्तर भजन गाते हैं)

भजन।

हरिहो भूलहु मम अपराधू।

अति मति मूढ़ गूढ़ तव लीला जानत केवल साधू॥
मै दिनरैन मगन विषया मों कबहु न तुव गुण गावों।
जगत जाल के किंकर बनि कै इत उत सब दिन धावों॥
जों औगुन प्रभु चित्त धरो तुम कबहु न मम निस्तारा।
त्राहि त्राहि अब तुम चरणन में टेरत "सिव" निरधारा॥

कृष्णगुण कौन सकै री गाई ।
बेद जाहि नित नेति पुकारत सारदहू सकुचाई ॥
चतुरानन जिहि अंत न पायो गाय चुराय लजायो ।
वृज पै रोस कियो मेघवा पर कछु का तासु बसायो ॥
धन्य धन्य त मातु जसोमति तिहि को गोद खेलायो ।
धन्य धन्य "सिव" हैं ब्रजवासी जिन दरसन सुख पायो ॥

निसि दिन बन्दो चरन तिहारो ।
जौं सुखसाज दियो करुनाकर हरहु सुहृदय विकारो ॥
देखि जगत सुख यह मन चंचल वापै नाहिं लुभावै ।
तुमरी कृपा बिसारि हिये तें सुत बित नहिं उरझावै ॥
हरिगुनगान करै निसुबासर संग कुसंग बिहाई ।
पाय अधिक सुख चलै न मो मन अहो कुपंथ कदाई ॥
जौं बर धारि दया अघहारी नेह कियो अति भारी ।
चरन कमल रज मन मधुकर "सिव" जोहे नाथ तिहारी ॥

(भजनानन्तर सुदामा वस्त्राभूषण धारण कर के कृष्णचरण में प्रणाम करते हैं और जयकृष्ण, जयकृष्ण के साथ पटाक्षप होता है)

शुभम् ।